

भारत के
ट्रेड यूनियन आन्दोलन
की समस्याएं

छत्तीसगढ़ माइन्स श्रमिक संघ का
एक लेख

शंकर गुहा नियोगी

शहीद शंकर गुहा नियोगी यादगार समिति

लोक साहित्य परिषद

पुनर्मुद्रण : दिसम्बर, १९९१

सहायतायें राशि : २) रुपये

प्रकाशक : लोक साहित्य परिषद

द्वारा - छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा

सो.एम.एस.एस. ऑफिस, दल्हीराजहरा

जि. दुम (म. प्र.) पिन - ४९१२२८

मुद्रक : विजय प्रिंटिंग प्रेस, बालोद

उद्योग और भारत

किसी भी देश के विकास के लिए उद्योग की स्थापना एवं निरंतर विकास होना जरूरी है। पिछली शताब्दी के अंत तक भारत में औद्योगिक विकास उल्लेखनीय नहीं रहा। अंग्रेज लौह इस्पात, भारी मशीन, कपड़ा, दवाई आदि इंग्लैण्ड से मंगाकर अपना धंधा चलाते थे। मुनाफा बटोरना अंग्रेजों का एक मात्र उद्देश्य था।

१९४७ के बाद अंग्रेज तो चले गए, लेकिन उनके धंधे ज्यों के त्यों रह गये। उसके बाद विभिन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियां विशेष रूप से अमेरिकी, जापानी, फ्रांसिसी एवं जर्मन कंपनियों ने भारत के उद्योग धंधों में हाथ डाले। हत्यारी युनियन कार्बाइड उनमें से एक है।

वर्तमान समय में भारत के उद्योग धंधे मूलतः तीन प्रकार के मालिक वर्ग के कब्जे में हैं।

(क) सार्वजनिक क्षेत्र के मालिक

इस देश में वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के तहत ४० हजार करोड़ रुपये से भी अधिक लागत के कल कारखाने, उद्योग धंधे चल रहे हैं। इस्पात, बिजली, कपड़ा, रेल, कोयला तेल आदि उद्योग में ज्यादातर सार्वजनिक क्षेत्र का कब्जा है।

(ख) बहुराष्ट्रीय कंपनियां

विदेशी कंपनियां, विशेष रूप से साम्राज्यवादी देशों के पूंजीपतियों ने सारी दुनिया के उद्योग धंधों पर अपना कब्जा जमा कर रखा है। सिर्फ समाजवादी देशों में ही इनके शिकंजे कमजोर हैं। साम्राज्यवादी दुनिया के मालिक वर्ग हमारे देश में भी इंजीनियरिंग दवाई, आटोमोबाइल, चाय, रबर, केमिकल्स आदि क्षेत्रों में उद्योग धंधा चला रहे हैं।

(ग) इजारेदार पूंजीपति

तीसरे महत्वपूर्ण पूंजीपति हमारे ही देश के इजारेदार पूंजीपति हैं। विरला, टाटा, डालमिया, किलोस्कर, महेन्द्र आदि इनमें हैं। देश में टेक्सटाईल, केमिकल्स, इस्पात आदि अनेकों उद्योग धंधों में इनका कब्जा है।

इसके अलावा कुछ पूंजीपति अपने उद्योग धन्धे के लिये जी तोड़ कोशिश तो कर रहे हैं लेकिन इन्हें अधिक कामयाबी नहीं मिल पा रही है। ये असंगठित रहने के कारण सरकार व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण की नीति का कुफल भोग रहे हैं और अपना गुस्सा अपने ही उद्योग में कार्यरत मजदूरों के उपर बताते रहते हैं।

छत्तीसगढ़ में दिन ब दिन उद्योग का विकास होता जा रहा है। औद्योगिक विकास की गुंजाइश भी प्रचूर है। जितना विकास अब तक हो चुका है, वह भी कम नहीं है।

यह सवाल बार बार उठता रहता है कि छत्तीसगढ़ में औद्योगिक विकास के साथ तालमेल रखकर छत्तीसगढ़ की जनता का विकास क्यों नहीं हो रहा है। इस सवाल का जवाब संगठित मजदूर वर्ग ही दे सकता है। संगठित मजदूर वर्ग अगर अपने ट्रेड यूनियन संगठन को एक स्कूल और हथियार के रूप में इस्तेमाल करें और संघर्ष एवं रचना के सिद्धांत पर आधारित अपने कार्यक्रम को आगे बढ़ाता जाय, तब ही छत्तीसगढ़ का मजदूर छत्तीसगढ़ के विकास के साथ अपना संपर्क बना सकेगा, स्वार्थी पूंजीपति वर्ग के किराये का टट्ट बनकर नहीं नाचेगा, हर क्षेत्र में मजदूरों का दबदबा प्रतिष्ठित हो सकेगा।

छत्तीसगढ़ के औद्योगिक मजदूर ही गुणात्मक सामाजिक परिवर्तन में एक निर्णायक इस्पाती नेतृत्व देने में कामयाब हो सकते हैं।

अब तक विभिन्न उद्योगों में फौलादी ट्रेड यूनियन नेतृत्व क्यों नहीं है?

(१) देश की जनता विभिन्न वर्गों * और राष्ट्रीयताओं * में बंटी हुई है। हर वर्ग के अपने अलग वग हित होते हैं और विभिन्न राष्ट्रीयताओं के हित भी अलग होते हैं। अब तक भारत में वैज्ञानिक पद्धति और विचारधारा के अनुसार विभिन्न शोषित वर्गों और विभिन्न राष्ट्रीयताओं की जनता के बीच एकता का आधार नहीं बनाया गया है। इस कार्य में ट्रेड यूनियनों की विशेष भूमिका को भी नजर अंदाज किया गया है।

(२) शोषक वर्ग अपनी बनाई व्यवस्था के जरिये ही जिन्दा है। शोषण पर आधारित शोषक वर्ग की व्यवस्था को, सिर्फ उस क्षेत्र विशेष की जनता की जरूरतों के मुताबिक, क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल का भरपूर उपयोग करते हुए, एक नई उत्पादन पद्धति के विकास के जरिये उस क्षेत्र की जन शक्ति के बलबूते पर वैकल्पिक व्यवस्था कायम करने के लिये किए गए संघर्ष के द्वारा ही ध्वस्त किया जा सकता है। ट्रेड यूनियनों ने इस विषय पर कभी भी सृजनात्मक दिशा देने के लिये सोचा ही नहीं।

(३) कुछ वर्ग मौजूदा व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं, बाकी वर्ग इस व्यवस्था को खत्म करना और नई व्यवस्था को कायम करना चाहते हैं। इन परस्पर विरोधी वर्ग समूहों में जीत किसकी होगी, किसकी बात चलेगी, इसका साफ जवाब है कि जो वर्ग बुद्धि और भौतिक शक्ति में ज्यादा ताकतवर होगा, विजय उसी की होगी।

वर्तमान समय में निश्चित रूप से पूंजीपति वर्ग तथा सामंतवादी तत्व ही अधिक बुद्धिमान और शक्ति सम्पन्न है। उनकी बुद्धि का मुकाबला करने के लिए हमें अपनी बुद्धि का विकास करना होगा। इसके लिये चार कार्य साथ-साथ जरूरी है - वर्ग संघर्ष, उत्पादन संघर्ष वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास का अध्ययन। हमारी शक्ति के विकास के लिये हमें व्यापक जनता को जगाने का काम लगातार करना होगा।

* जैसे मजदूर, किसान, पूंजीपति वर्ग, छोटा व्यवसायी वर्ग, जमींदार वर्ग आदि

* जैसे-छत्तीसगढ़ी उड़िया, मराठी, तेलगू, बंगाली, तमिल, बिहारी, पंजाबी झारखंडी, उत्तराखंडी आदि। भारत में लगभग ४२ ऐसे राष्ट्रीयता समुदाय हैं।

आज का ट्रेड यूनियन आन्दोलन न केवल इस पद्धति का प्रयोग नहीं करता बल्कि उसे ये बातें नापसन्द भी है।

जहां पूंजीपति वर्ग एवं हर प्रकार के साम्राज्यवादी इतिहास की हर घटना और वस्तुगत परिस्थिति से सीख लेते हैं, वहां आज भारत के ट्रेड यूनियनवादी लोग उसे दोहराने की सोचते हैं, यह तरीका अवैज्ञानिक है।

(४) हमारे जैसे पिछड़े हुए देश में पूंजीपति वर्ग मजदूरों को ट्रेड यूनियन का अधिकार निम्नलिखित कारणों से देता है :-

(क) दमन और शोषण से त्रस्त मजदूरों द्वारा अचानक बगावत करने की आशंका को निर्मूल करने के लिए,

(ख) उद्योगों में मालिक वर्ग द्वारा तय अनुशासन के दमन मूलक नियमों व हर प्रकार के कानूनी बंधन को ट्रेड यूनियन के नेताओं के माध्यम से मजदूरों को स्वेच्छा पूर्वक मनवाने के लिए,

(ग) सिर्फ आर्थिक संघर्ष के लिए मजदूरों को प्रोत्साहित करके मजदूरों की सोच को सिर्फ उसके उद्योग तक ही सीमित रखने के लिए,

(घ) सह अस्तित्व की नीति को सभी स्तरों पर प्रचारित और प्रतिष्ठित करने के लिए।

आज भारत की केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों मालिक वर्ग के इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने में लगी हुई है।

(५) विभिन्न राष्ट्रीयताओं के हमारे देश में, नीकरी की भर्ती नीति भी ट्रेड यूनियनों के मजबूत नहीं होने का एक प्रमुख कारण है।

अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने १९१७ की अक्टूबर क्रांति से उपयोगी शिक्षा हासिल की थी। उद्योग में उसकी भर्ती की नीति भी भारत में इस प्रकार की क्रांति की सम्भावनाओं पर रोक लगाने के लिये तय की गई थी। कहीं सर्वहारा के नेतृत्व में भारत में जनवादी

लोकतांत्रिक क्रांति सम्पन्न न हो जाय इसके लिए उन्होंने काफी दूरदर्शिता दिखाई। किसी खास क्षेत्र में स्थित उद्योगों में उस क्षेत्र के लोगों की भर्ती न करके अन्य क्षेत्रों के लोगों को भर्ती किया गया। मध्यप्रदेश व झारखण्ड की कोयला खानों में सेन्ट्रल रिक्रूटमेंट ऑफिस के माध्यम से गोरखपुरी मजदूरों को भर्ती किया गया। आसाम और बंगाल के चाय बगानों में छत्तीसगढ़ी और झारखण्डी मजदूरों की भर्ती की गई। झारखण्ड और बंगाल की कोयला खदानों में छत्तीसगढ़ी और गोरखपुरी मजदूरों को भर्ती किया गया।

क्षेत्रीय विकास में क्षेत्रीय जनता की भागीदारी ही राष्ट्रीय विकास की गारंटी है। क्षेत्रीय विकास में बाहर से आये हुए मजदूर दिलचस्पी नहीं लेते क्योंकि उनकी राष्ट्रियता, संस्कृति तथा आर्थिक पृष्ठभूमि अलग है। इस तरह चूंकि उद्योगों में अधिकांश मजदूर बाहरी क्षेत्रों से आये हुए हैं, इसलिए मजदूर वर्ग क्षेत्रीय विकास की मुख्य धारा से हट जाते हैं, नेतृत्व देना तो दूर की बात। चूंकि इन मजदूरों की आर्थिक सामाजिक जड़ें कहीं और है, इसलिये वे स्थानीय विकास के मुद्दों से जुड़ नहीं पाते। नतीजा होता है एक बहुत ही असन्तुलित और विकृत विकास।

भारत के विभिन्न उद्योग कारखानों में ग़ोरे अंग्रेजों के इस तरीके को काले अंग्रेजों ने भी वफादारी के साथ अपनाया है। भिलाई के ९० प्रतिशत मजदूर दूसरे क्षेत्रों से आये हुए हैं, बोकारो में दक्षिण बिहार से आये मजदूरों की संख्या २० प्रतिशत से अधिक नहीं है। दुर्गापुर इस्पात कारखाने में स्थानीय लोगों की कमी न हो वहां के ग्रामांचल में झारखण्ड की आवाज को जोरदार किया है। टाटा के कारखाने में भी आपको बहुत ही कम झारखण्डी मिलेंगे।

एक तरफ तमाम सुविधाओं से भरपूर इस्पात नगरी, मानो एक गमला में सुन्दर सा गुलाब का पौधा है, दूसरी तरफ घोर दरिद्रता के अंधकार में डुबे हुए गांव। एक तरफ अधिक वेतन पाने वाले संगठित मजदूर और दूसरी ओर गांव में भूखमरी के शिकार खेतिहर मजदूर गरीब किसान और बेरोजगारों की फौज। इसी प्रक्रिया से शासक वर्ग मजदूरों को दो टुकड़ों में बांटता है। अफसर और मैनेजमेंट के लोग

करीब सभी बाहर के लोग होते हैं। वे क्षेत्रीय विकास में कोई दिलचस्पी तो लेते ही नहीं, बल्कि वे जानबूझकर क्षेत्र की प्रगति के लिए जरूरी साधनों को बरबाद कर देते हैं।

इन कारखानों में ट्रेड यूनियन तब जमती है जब उत्पादन शुरू हो जाता है, इसलिए इन उद्योगों में ट्रेड यूनियन गंदे पानी में कीड़ों की तरह बिलबिलाते रहते हैं। ऐसी स्थिति कायम करने में केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों सरकार और नौकरशाहों को भरपूर मदद करती है।

६) ट्रेड यूनियनों का कार्यक्रम भी अन्य राजनीतिक सिद्धांतों की तरह वैचारिक दिवालियापन का शिकार है। ट्रेड यूनियन मजदूरों का संगठन होता है। मजदूर वर्ग का वैज्ञानिक सिद्धांत उनको उस नये प्रकार की राजसत्ता कायम करने के लिए प्रेरित करता है, जो वर्तमान व्यवस्था का कब्र पर खड़ी की गई हो, यह सिद्धांत पुराने को तोड़ने का और नये का निर्माण करने का राजनीतिक सिद्धांत है। ट्रेड यूनियन से उम्मीद की जाती है कि वह इसी सिद्धांत की रोशनी में काम करेगी। परन्तु वर्तमान व्यवस्था ऐसी ट्रेड यूनियन को स्वीकार नहीं कर सकती, जो वर्तमान व्यवस्था की कब्र खोदे। जब वह पायेगी कि ट्रेड यूनियन का व्यवहार व्यवस्था के खिलाफ है, तो वह ट्रेड यूनियन कानून को ही समाप्त कर देगी। ट्रेड यूनियन रहेगा या नहीं रहेगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि ट्रेड यूनियन का सिद्धांत समाज की सबसे प्रतिक्रियावादी घृणित शक्ति को अपना दुश्मन करार देकर बाकी वर्गों के साथ तालमेल का नया सैद्धांतिक आधार बनता है या नहीं, प्रतिक्रियावादियों के आपसी द्वन्द को तेज करने में मदद कर और एक लचीली कार्य पद्धति पर अमल करते हुए हर मामले में अगुवा भूमिका स्वीकार करता है या नहीं, एक बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के लिए मजदूर वर्ग को जागरूक करता है या नहीं।

आज की केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों इस दिशा में किसी भी प्रकार की नीति अपनाने के बदले, सिर्फ सरकार के राजनीतिक दबाव का इस्तेमाल करके मैनेजमेंट की मदद से ट्रेड यूनियन नाम की दुकानदारी चला रही है। चाहे बाहरी रूप कुछ भी हो सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों दलाली की चैम्पियनशिप हासिल करने के होड़ में लगी हुई है।

७) राजनीति "पंडितों" की स्वेच्छाचारिता के कारण भी भारत में ट्रेड यूनियन आन्दोलन सही ढंग से विकसित नहीं हो पाया है। अंग्रेजों के जमाने में "एटक" यूनियन के कम्युनिस्ट हिस्से ने समाजवादी क्रांति की आवाज बुलन्द करके उग्रवादी लाईन चलाकर मजदूर आन्दोलन का सर्वनास किया (शोलापुर का इतिहास उल्लेखनीय है)। १९४६-४७ में भी बी. टी. रणदिवे ने समाजवादी क्रांति कहकर तेलंगाना आन्दोलन को गुमराह किया। एटक यूनियन का कांग्रेसी हिस्सा उधर उद्योगों में संघर्ष पनपने न देकर मालिक वर्ग की तरफदारी करता रहा। इसी हिस्से ने स्वतंत्रता के बाद इटक यूनियन बनकर सरकारी ट्रेड यूनियन का रूप अपनाया। आज कम्युनिस्ट और मार्क्सवादी पार्टियों की यूनियन इटक की 'दिलदार' भावना से ओत प्रोत हो चुकी है। चारू मजूमदार के नेतृत्व में नक्सलवादी संघर्ष ने मजदूर वर्ग में नई आशा का संचार किया था, लेकिन उन्होंने भी बाद में ट्रेड यूनियन में संशोधनवादी नेतृत्व के खिलाफ संघर्ष न कर "ट्रेड यूनियन छोड़ दो" वाले पलायनवादी सिद्धांत की प्रतिष्ठा की।

स्वेच्छाचारी इन राजनीतिक पंडितों की कृपा से कभी भी ट्रेड यूनियन भारत की मेहनतकश जनता की इच्छा के मुताबिक अपने को ढाल नहीं पाया। जो आया वह पछताया, और जो नहीं आया वह भी पछताया। आज भी हर इक ट्रेड यूनियन के सदस्य मजदूर अपने व्यक्तिगत हित और अपने उद्योग के मजदूरों के हित को देश की तमाम जनता के हितों के साथ मिलाकर यानि साधारण को विशेष के साथ जोड़कर देख नहीं पाये। पश्चिम बंगाल के कारखानों में यह कहावत प्रचलित है कि "वोट के लिए तिरंगा झन्डा, पेट के लिए लाल झन्डा" इसी सिलसिले में उनकी नई उपलब्धी है "वोट के लिए सगा भाई"।

भारत की ट्रेड यूनियन राजनीतिक पार्टियों पर प्रभाव डाल नहीं पायी है, बल्कि निराशाग्रस्त नेताओं ने ट्रेड यूनियनों पर हावी होकर सारे मजदूर आन्दोलन को भंवरजाल में फंसा दिया है।

८) ट्रेड यूनियन मजदूर वर्ग का हथियार है। ठोस ढंग से इस हथियार का प्रयोग करने की विधि है— जनवादी केन्द्रीयता। संघर्ष का निर्णय, संगठन से संबंधित मामलों में फैसला, जनवादी तरीके से करना चाहिए,

एवं इन फैसलों को केन्द्रीयता के मातहत लागू करना चाहिए। कभी-कभी भारी संख्या में मौजूद या दूर-दूर तक छितराये हुए मजदूरों में सामान्य ढंग से इस विधि का प्रयोग करने में दिक्कत आती है। इस स्थिति में विभिन्न इकाइयों में व्यापक चर्चा चलाकर, "जनता से जनताको" की भागीदारी और समस्या के प्रति उनकी जागरूकता का आधार कायम रह सकता है।

आज की तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनने इस पद्धति का प्रयोग नहीं करती है। वहां निर्णय ऊपर से थोक दिया जाता है। वास्तविक समस्या, मजदूर वर्ग की विचारधारा, अत्याचारी ताकतों द्वारा निर्दय दमन आदि के विषय में नेतृत्व लापरवाह रहता है। ये यूनियन वाले श्रम कानून पर, श्रम कानून लागू करने वाले शोषक वर्गों की मशीनरी व कानूनी व्यवस्था के मामलों की जरूरतों पर अधिक ध्यान देते हैं। ये लोग इन मामलों में मजदूर वर्ग की अज्ञानता और निस्पृहता का लाभ उठाकर नौकरशाही यानि सिर्फ केन्द्रीयता की पद्धति से तमाम मामलों का निराकरण या निपटारा करते हैं। इसी प्रकार आज की ट्रेड यूनियनने एक भयावह स्थिति पैदा कर चुकी हैं। इससे ट्रेड यूनियनों को बनाये रखने रखने में पूंजीपतियों की जरूरतें भी पूरी नहीं हो रही हैं, महानतकशी के हथियार के रूप में ट्रेड यूनियन का इस्तेमाल करना तो दूर की बात है।

मजदूरों पर ट्रेड यूनियन का कोई प्रभाव नहीं रहता है, मजदूर ट्रेड यूनियन के सदस्य नहीं बनते हैं और न ही सदस्यता शुल्क देते हैं। काल्पनिक नामों से सदस्यता रजिस्टर भरे रहते हैं, एक से अधिक यूनियन एक मजदूर की सदस्यता का दावा करते हैं। मजदूर हंसता है कि उसने विभिन्न यूनियनों को बेवकुप बना दिया और यूनियन वाले हंसते हैं कि मजदूर बेवकुप बन गया और पूंजीपति इन दोनों की बेवकुफी पर हंसता है और खुद को अधिक सुरक्षित महसूस करता है। मजदूरों की मामूली से मामूली समस्या का निपटारा भी ठेके में होता है। इस नौकरशाही तरीके से मालिक का उद्देश्य पूरा न होने पर भी वह खुश रहता है। मालिक मजदूर में से १०-२० प्रतिशत "लायक" मजदूरों को छांट लेता है। प्रमीशन, ओभर-टाईम, कामचोरी या

अन्य सुविधायें देकर मैनेजमेंट अपना समर्थक गूट बना लेता है, इस गूट के लोग हर यूनियन में घुसते रहते हैं। उस उद्योग में मजदूरों का जीवन गुलाम से बदतर होता है। तानाशाही तरीका जारी रहता है। उधर मालिक के पैर चाटने वाले कुत्ते अपने गले में लगे बेल्ट को फूलमाला मानकर अपने को गौरवान्वित महसूस करते रहते हैं।

नौकरशाही या सिर्फ केन्द्रीयता की पद्धति के साथ-साथ एक और भी खतरा नजर आता है — ट्राटस्कीवादियों का पथ। यह सिर्फ जनवादी प्रक्रिया को जरूरत से अधिक महत्व देने का पथ है। हालांकि यह पद्धति भी जनवादी प्रक्रिया को सिर्फ कार्य पद्धति में लागू करता है। कार्यनीति तो मानो किसी अदृश्य स्थान से आ घमकती है। संगठन के बड़े आकार को दिखाकर इसकी बात टाल दी जाती है। कार्य पद्धति में जो भी जनवादी प्रक्रिया का इस्तेमाल होता है, उससे जन गायब हो जाता है, और केवल वाद बचा रहता और फिर वाद को लेकर विवाद पैदा होता है, जितने सिर उतने ही मत और उतने ही पथ। इस प्रकार बहु केन्द्रीयता से संगठन का शरीर कैंसर की बीमारी का घर बन जाता है। आज के सोशलिस्ट ट्रेड यूनियनों की ऐसी ही दुःस्थिति है। हालांकि इस प्रकार की ट्रेड यूनियनों को पूंजीपति अधिक महत्व देते हैं, लेकिन मजदूर वर्ग की एकता की भावना का फायदा उठाते हुए नौकरशाही वाले ट्रेड यूनियन अधिक कामयाब रहते हैं।

एकमात्र जनवादी केन्द्रीयता की पद्धति ही ट्रेड यूनियन की सही पद्धति हो सकती है।

९) मजदूर वर्ग की सही राजनीतिक पार्टी के अभाव में तथा सही ट्रेड-यूनियन के नहीं रहने से आज "नेता" शब्द अपनी इज्जत आबरू खो बैठा है। स्वार्थी, अनैतिक और उच्चश्रृंखल जीवन जीने वाले असामाजिक तत्वों के झुण्ड और गुण्डा प्रकृति के निर्दय व्यक्ति जब माइक के सामने खड़े होकर लम्बी चौड़ी हांकने में माहिर होते हैं, दरोगा साहब से दोस्ती गांठते हैं, और पद रूपी सिंहासन पर कब्जा रखने की शैली अख्तियार कर लेते हैं, तथा देश व प्रांत की राजधानियों में नियमित संपर्क साधते

हुए आम जनता को आश्वासनों के भंवरजाल में घुमाते रहते हैं, तब ऐसे व्यक्ति "नेता" कहलाते हैं। ऐसे नेताओं को दिली दिमाग से जनता नफरत करती है।

एक और प्रकार के नेता होते हैं, ये मार्क्स और लेनिन के किताबों के नाम जानते हैं और समय समय पर उन नामों को उद्धृत करते हुए अपनी विद्वता को जाहिर करते रहते हैं। ये लोग अर्जी अपील लिखने में माहिर होते हैं। ये उत्पादन से विमुख रहते हैं। ये लोग घरेलू झगड़ों की व्याख्या भी अंतर्राष्ट्रीय और ऐतिहासिक महत्व की घटनाओं की रोशनी में करने की कोशिश करते हैं। तर्क में ये लोग रातें गुजार देते हैं, जो कुछ कहते हैं वह करते नहीं, और जो करते हैं, कहते नहीं। वे ज्यादा माला माल नहीं होते, फिर भी रंगीन जिन्दगी जीने के शौकीन होते हैं। मजदूर इन नेताओं का विश्वास नहीं करते, ये नेता मजदूरों का विश्वास नहीं करते। ऐसे ही नेताओं से सुशोभित ट्रेड यूनियनों ने मजदूरों के जीवन को दूभर कर दिया है।

संगठन हो या आन्दोलन, नेतृत्व का सवाल एक महत्वपूर्ण सवाल है। एक साधारण व्यक्ति के गलत विचारों या कार्यों से अधिक लोगों को नुकसान नहीं होता परन्तु नेतृत्व के गलत विचारों और कार्यों से लाखों करोड़ों जिन्दगियां बुरी तरह प्रभावित होती हैं। इसीलिए नेतृत्व के बारे में सही जानकारी होना जरूरी है। नेतृत्व को अपने वर्ग का सबसे अधिक वर्ग सचेतन अंश होना चाहिए। यह बात पूंजीपति वर्ग पर भी उतना ही लागू होता है जितना मजदूर वर्ग पर।

सबसे अधिक वर्ग सचेतन होने के तरीका का जिक्र पहले ही किया गया है, यह चार सूत्रीय तरीका है - वर्ग संघर्ष, उत्पादन संघर्ष, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास का अध्ययन। वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत ट्रेड यूनियनों में बगैर वर्ग संघर्ष के भी नेतागिरी चलती है। लेकिन अगर इस व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करना है तो अवश्य ही सामंतवादी पूंजीवादी आदि प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ संघर्ष में नेतृत्व को खुद भी बहादुरी के साथ भाग लेना होगा। अक्सर देखा जाता है कि जब जनता आन्दोलन करती है तब नेतृत्व चुपचाप मुंह छिपाकर भाग जाता है। जो आदमी कर्फ्यू और १४४ धारा के जमाने में सिर के बल नोचता है,

वह ही स्थिति शांत होने पर नेता बन जाता है। इससे मजदूर आन्दोलन पूंजीपतियों की राह पर चलने लगता है।

वर्ग संघर्ष में निडरता से भाग लेना सही नेतृत्व की पहली कसौटी है। दूसरी कसौटी है - उत्पादन संघर्ष। ऐसे कामचोर आदमी जिनको उत्पादन के काम में कोई दिलचस्पी नहीं, वह नेतृत्व के लायक नहीं हैं। दीवाली के पहले घर में मकड़े की जाली की सफाई करने की तरह मजदूर वर्ग को अपने ट्रेड यूनियन घर से ऐसे उत्पादन विमुख नेताओं का सफाया कर देना चाहिये।

नेतृत्व तभी सही नीति निर्धारण और कार्य पद्धति का प्रयोग कर सकेगा जब वह साधारण परिस्थिति को विशेष परिस्थिति के साथ जोड़ सके। अगर हड़ताल करना है तो नेतृत्व को यह समझ होनी चाहिए कि मुख्य मुद्दा क्या होगा, हड़ताल का यह उचित समय है या नहीं, अगर नेतृत्व इस पर सही निर्णय नहीं ले सकता तो आंदोलन में मार खाने की पूरी गुंजाइश रह जाएगी। साधारण परिस्थिति की जानकारी वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास की जानकारी के जरिये ही हो सकती है। सफल नेतृत्व की कसौटी है - साधारण परिस्थिति की पूर्ण जानकारी और विशेष परिस्थिति में उस जानकारी को लागू करने की क्षमता। नेतृत्व को व्यक्तिगत तौर पर महत्वाकांक्षी नहीं होना चाहिए। ईमानदारों और कुर्बानी नेतृत्व के साथ श्वास-निश्वास की तरह जुड़ हुए गुण होने चाहिए तभी वह नेतृत्व लोकप्रिय हो सकता है और उस नेतृत्व पर भरोसा करके लाखों लोग जान को हथेली पर रखकर संघर्ष में कूद जायेंगे।

(१०) अर्थनीतिवाद - आर्थिक मांग के लिये संघर्ष करना अर्थनीतिवाद नहीं है, परन्तु जब संघर्ष आर्थिक मांग के लिये होता है और आर्थिक मांग के अलावा बाकी तमाम राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सवालों को ताक पर रख दिया जाता है तब इस प्रकार की नीति को अर्थनीतिवाद कहा जाता है। यह एक खतरनाक नीति है। आज की ट्रेड यूनियनें ऐसे ही खतरनाक रास्ते पर चल रही हैं, इससे ट्रेड यूनियन के जीवन की सजीवता समाप्त हो चुकी है और सूखी लकड़ी पर बड़ई द्वारा रेंदा चलाय जाने की तरह मजदूरों की जिन्दगी के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक पहलुओं में निराशाजनक कृत्रिमता लाकर उन पर

पूँजीपतियों की राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विचारों को थोपा जा रहा है।

हमें ऐसी रेंदा लगाई गई लकड़ी की जरूरत नहीं है, हम एक सजीव सुन्दर वृक्ष की तरह का जीवन अपने अन्दर समा लेना चाहते हैं। पूँजीपति मजदूरों को असम्पूर्ण, विकृत कमजोर बनाकर रखना चाहते हैं। पूँजीपति मजदूरों को एक सस्ते कीमत की निर्जीव वस्तु की तरह बनाकर रखना चाहते हैं, इससे उनके मालामाल होने की प्रक्रिया के सुरक्षित रहने की गारन्टी हो जाती है।

पूँजीवादी विचारों वाले अवसरवादियों ने मजदूर आंदोलन को गुमराह करने के लिए अर्थनीतिवाद को जारी किया है। इन अवसरवादियों को संशोधनवादी कहा जाता है। ये मजदूरों की वैज्ञानिक विचारधारा का विरोध करते हैं और पूँजीपतियों के बताये रास्ते पर मजदूरों को ले जाने की कोशिश करते हैं।

नतीजा यह हो रहा है कि आज देश में तमाम ट्रेड यूनियनों के सामने साल में एक बार बोनस की लड़ाई लड़ने और तीन या पांच साल में एक बार वेतनमान बदलने की लड़ाई लड़ने के अलावा दूसरा कोई कार्यक्रम नहीं रह गया है। तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों का काम सिर्फ प्रमोशन के लिये सिफारिश करने या चार्ज सीट का जवाब देने की दुकानदारी तक सीमित रह गया है।

उत्पादन की नीति का निर्धारण पूँजीपति करता है। इससे धड़ल्ले से मशीनीकरण का राक्षस मजदूरों की नीकरियों को खाये जा रहा है। राजनीति करने की जिम्मेदारी ठेकेदारों, शराब ठेकेदारों, मालगुजारों आदि शोषक वर्गों को सौंप दिया गया है।

संस्कृति का ठेका बम्बई के स्मगलर और दूसरे काले पैसे के पूँजीपति को दे दिया गया है, जो ढुसुम-ढुसुम और नंगे नाच वाले कुसंस्कृति को जन संस्कृति बनाने में ओवर टाईम कर रहे हैं।

शराब के नशे में पूरा देश बेहोश है महिलाओं पर अत्याचार जारी है और इधर ट्रेड यूनियनों के पास सिर्फ एक ही कार्यक्रम है -

“बोनस दो, बोनस दो” पैसा बढ़ता है, मंहगाई और भी बढ़ती है, मजदूर की जेब खाली हो जाती है और सूद खोर के चंगुल में जा फंसता है। ठेकादार पैसा बढ़ाता है और शराब ठेकेदार उसे लूट ले जाता है। घर की औरत मार खाती है, बच्चों को भूखा रहना पड़ता है मजदूर झोपड़ियों में सदा सोया रह जाता है।

आज बैंक, जीवन बीमा वगैरह उद्योगों में अर्थनीतिवाद इतना मजबूत जड़ जमा चुका है कि वहां मजदूरों के सामने अपने उद्योगों को छोड़कर दूसरे उद्योगों के मजदूरों के मामले और संघर्षों के बारे में कोई विचार ही नहीं रहता है। इन उद्योगों में ट्रेड यूनियन नेतृत्व मजदूरों को आत्म केन्द्रीत और संवेदनहीन बना चुका है।

अर्थनीतिवाद के एक और प्रकार का नमूना रेल उद्योग में देखने को मिलता है। यहां हर मजदूर अपने विभाग के महत्व और अपने विभाग की समस्या से ही घिरा रहता है। वहां जब गार्ड साहब हरो झंडी दिखाते हैं तब गैंगमेन अपनी लाल झंडी दिखाकर बैठ जाते हैं। वहां पर लाल-हरे को मिलाकर सारे रेल मजदूरों को संगठित करने का प्रयास आज नहीं किया जा रहा है। अल्प समय के लिये १९७४ के ऐतिहासिक रेल हड़ताल ने इस दिशा में एक उम्मीद को जन्म दिया था, जिसकी गाड़ी केन्द्रीय यूनियनों के चक्कर में फिर से पटरी पर से उतर गई। इसके फलस्वरूप १४६ स्वतंत्र यूनियनों को इस तरह तानाशाही हमलों का शिकार होना पड़ा कि अभी तक वे फिर से खड़ी नहीं हो पाई। इस्पात उद्योग में भी इस तरह का संशोधनवादी प्रयास जारी है। इसी कारण चार्जमैन, क्रेन आपरेटर, हार्थमेन आदि मजदूरों को अलग-अलग संगठनों में संगठित करने की कोशिश चल रही है, फिर भी स्टील प्लांट की इटीग्रेटेड व्यवस्था के कारण इन प्रयासों को मैनेजमेंट का पूर्ण समर्थन नहीं मिल पा रहा है।

अर्थनीतिवादी लोग चाहे जितना भी आर्थिक मांगों के बारे में आवाज बुलन्द करें, फिर भी आज ट्रेड यूनियनों के कार्यकर्ता इस बारे में वाकिफ हैं कि :-

(क) सन् १९४७ या १९६० के मूल्य सूचकांक के साथ आज के मूल्य सूचकांक की तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि इन ४३ सालों या

३० सालों के बीच मजदूरों का वेतन रुपये में बढ़ा है लेकिन असली वेतन घटा है। मतलब यह हुआ कि आर्थिक संघर्ष और समझौतों के बाद भी कुछ हासिल नहीं हुआ बल्कि शोषण और भी बढ़ा है।

(ख) आर्थिक मांगों के बारे में ट्रेड यूनियनों का दिमाग सरकार के दिमाग द्वारा परिभाषित होता है। जैसे कि हर बार वेतन संशोधन (वेजरिबीजन) में देखा जाता है कि वहाँ पुनर्विचार के लिये विशेष समयावधि का प्राबधान दिया रहता है। सरकार के विज्ञप्ति (नोटिफिकेशन) के अधिकार और विभिन्न कमीशनों के सिफारिशों को मजदूरों के सामने रखकर मैनेजमेंट मजदूरों और ट्रेड यूनियनों को लालायित करता रहता है।

(ग) सरकार विभिन्न श्रम कानूनों को गोल माल बनाकर इस व्यवस्था के अन्दर ही गुंजाइश की मरीचिका दिखाती है।

(घ) उद्योग पर क्षेत्र के आधार पर वेतनमान बनाकर सरकार एक अस्थायी लक्ष्मण रेखा खींच देता है। अंग्रेजों के जमाने में जिस तरह अंग्रेज लोग रियासतों के लिये अलग-अलग कानून बनाकर रियासतों की जनता के मुँह से “अंग्रेजों का कानून लागू करो” वाली मांग उठवाने का साम्राज्यवादी तरीका अपनाये हुए थे, आज भी उसी तरीके से सरकार अर्थनीतिवाद को बढ़ावा दे रहा है। एक उद्योग के मजदूर दूसरे उद्योग के मजदूरों के समान वेतन हासिल करने की कोशिश में सारी जिन्दगी बिता देते हैं।

(ङ) “कुछ छोड़ो - कुछ लो” (गिव एण्ड टेक) की नीति ही इसी स्थिति में जड़ पकड़ लेती है। विजय का नहीं बल्कि समझौते का पाठ पढ़ाया जाता है। जबकि हर समझौता को लागू करने की समस्या हर हमेशा बनी ही रहती है “इन्कलाब जिन्दाबाद” के नारे के साथ “वेतन समझौता जिन्दाबाद” के नारे से आसमान गूँजता रहता है, इन्कलाब कभी नहीं आता।

आज केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों अर्थनीतिवाद के गड्ढे में फंस चुकी है। आर्थिक मंदी के युग में कर्ण का रथ जमीन में धंसता जा रहा है, कर्ण जितना ही रथ हांकता है, रथ उतना ही गतिहीन रहता है, कर्ण अपने ही रथ में बंदी बना हुआ है।

इस हालत में नेता मजदूरों को सान्त्वना देता है - "हो रही है, बातचीत हो रही है" "कुछ मिला है" "कुछ दिला देंगे" । मजदूर अब आश्वासनों से खुश नहीं है । अब मजदूर बढ़ चला है, सेनापति पीछे । पीछे फंसा हुआ सेनापति मजदूरों को उग्रवादी कहकर वामपंथी भटकाव और पृथक्तावाद की दुहाई देकर अपने को व्यवस्थारूपी भगवान के सामने निर्दोष बता रहा है । मजदूर वर्ग केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों को हटाकर स्वतंत्र ट्रेड यूनियनों का निर्माण कर रहे हैं, लेकिन अधिकांश स्वतंत्र ट्रेड यूनियन भी उसी राह के राही हैं ।

अर्थनीतिवाद का अंधकार नहीं, आर्थिक संघर्ष के साथ साथ शक्ति का अबलोकन भी चाहिए, एक इज्जतदार मजदूर वर्ग की प्रतिष्ठा चाहिए, नई संस्कृति की शुद्ध हवा चाहिए, एक क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन चाहिए ।



इस देश के ट्रेड यूनियन आंदोलन का इतिहास लगभग १०० साल पुराना है। भारत के ट्रेड यूनियन आंदोलन का उद्भव इंग्लैंड एवं अन्य विकसित पूंजीवादी देशों की प्रेरणा से ही हुआ था। विकसित पूंजीवादी देश (जहां औद्योगिक क्रांति हो चुकी है) एवं अविकसित देशों की परिस्थिति में काफी अंतर है। अविकसित देशों में ट्रेड यूनियन आंदोलन यदि समस्त देशप्रेमी वर्गों का मोर्चा बनाकर साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करने की दिशा में नहीं बढ़ता है, तो बेशक अर्थनीतिवाद के गड्डे में फंसकर विकृत रूप ले लेता है। दुर्भाग्यवश हमारे देश के ट्रेड यूनियन आंदोलन की भी यही गति रही है।

अविकसित देशों में ट्रेड यूनियन आंदोलन की समस्याएँ एवं उसकी जिम्मेदारियाँ अधिक होती हैं। इस हालत में, अपने देश में ट्रेड यूनियन आंदोलन के विकास के लिये काफी चर्चा की जरूरत है।

इसी चर्चा की शुरुआत के रूप में वर्तमान लेख को हम प्रस्तुत करते हैं। भविष्य में भी इतने मुद्दों पर चर्चा को हम पुस्तिका के स्वरूप में प्रस्तुत करते रहेंगे, ताकि हम अपनी दिशा कर्मनीति व कर्म पद्धति को तय कर सकें।